नैतिक शिक्षा एवं संस्कृति का महत्त्व

शिव कुमार

शोध छात्र, मानविकी संकाय, रामचन्द्र चन्द्रवंशी विश्वविद्यालय, पलामू, झारखण्ड

सार

भारतीय समाज और संस्कृति नैतिक मूल्यों को बहुत महत्व देते हैं। बचपन से ही, व्यक्तियों से इस तरह के व्यवहार की उम्मीद की जाती है जो नैतिक रूप से सही हो। उन्हें सिखाया जाता है कि समाज के अनुसार सही और गलत क्या है। एक अच्छे नैतिक चरित्र को सहन करना भी सिखाया जाता है। शराब पीने, धूम्रपान और अन्य कुख्यात गतिविधियों में लिप्त होना भारतीय समाज में लगभग वर्जित है, जबकि व्यक्तियों को अच्छें नैतिक मूल्यों को धारण करना चाहिए। मानसिकता में बदलाव और जीने के तरीके के साथ नैतिक मूल्यों में भी बदलाव होना चाहिए। समय बदल रह है और समय के साथ लोगों की मानसिकता भी बदल रही है। हालकिं समय के साथ चलना अच्छा है, लेकिन लोगों की जड़ों और नैतिक मूल्यों से दूर जाना अच्छी बात नहीं है। नैतिक शिक्षा आधारित आचरण करेंगे तो युवा और बच्चे अनुसरण करेंगे, इसलिए यदि हम भावी पीढ़ी को उच्च नैतिक स्तर वाला देखना चाहते है तो उच्च आदर्श को स्वयं पालन करने वाला बनना होगा। शिक्षा के द्वारा समस्त मानव जीवन का विकास होता है।

नैतिक मूल्यों का विकास होता है और मनुष्य अपनी जिम्मवारी को स्वीकार करता है। लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास से सामाजिक न्याय, अनुशासन, सहनशीलता, इमान्दारी, सत्यता, अहिंसा, आजादी, मानवता और शांति स्थापित होती है। लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में शिक्षा की अहम भूमिका होती है जिससे योग्य नागरिकों का निर्माण हो सके। मनुष्य के अन्दर देश प्रेम की भावना विकसित करने के लिए, अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान कराने के लिए, मानवीय गुणों का विकास करने के लिए और भारतीय सभ्यता सांस्कृतिक का निर्माण करने के लिए आवश्यक है।जीवन में शिक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा व्यक्ति और राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है।

''मातेव रक्षति, पितेव हिते नियुक्ते कान्तेव चापि रमयत्य पत्नीम स्वेदम''

यानि विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह सदमार्ग का अनुकरण करने की प्रेरणा देती है और पत्नी के समान सुख देती है, परन्तु वर्त्तमान परिवेश में समाज में चारों ओर नैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में अधोगति आ रही है जिसका कुप्रभाव छात्रों में भी देखने को मिल रहा है। छात्रें द्वारा हड़ताल, तालाबंदी अपनी माँगों को स्वीकार कराने के लिये प्रदर्शन आदि अनेक हिंसक घटनायें देखने को मिल रही है। दिन-प्रतिदिन आखिर क्यों बढ़ता ही चला जा रहा है? इसका एक मात्र कारण छात्र असंतोष, जो शिक्षा में नैतिक मूल्यों के पतन की बजह है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक विकास, राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है।

सर्वांगीण विकास में ज्ञान के अतिरिक्त भाव, कर्म, चरित्र, कला, राष्ट्रीयता आदि का विकास भी सम्मिलित किया जाता है। विकास के ये पक्ष पूर्णत: व्यक्तिगत नहीं होते। ये सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों के समन्वय से ही सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के विकास के माध्यम से शिक्षा राष्ट्र का निर्माण करती है। विश्वसमाज के निर्माण को शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य कहा जा सकता है जो लक्ष्य का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु विश्व के राष्ट्र अभी अपनी राष्ट्रीय सीमाओं में ही बंधे हुए हैं। अत: विश्व समाज का निर्माण अभी शिक्षा का केवल सैद्धान्तिक लक्ष्य बना हुआ है। व्याविहारिक दृष्टि से सभी देशों के शिक्षा अपने राष्ट्र में निर्माण को ही अपना लक्ष्य मानकर चला रहे हैं।

प्राचीन ग्रंथ के अनुसार:-

''विद्या विहीन: पशु''यानि विद्या बिना मानव पशु समान है। डॉ. ए. एम. अल्तेकर-शिक्षा प्रकाश का वह

स्त्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा मार्ग दर्शन करती है।

प्राचीन काल की शिक्षा के चरित्र निर्माण, संस्कार, व्यवहार आदि पर विशेष बल दिया जाता था। प्राचीन गुरुकुल परंपरा से श्रेष्ठ संस्कार एवं चरित्र की जीवन भर लहलहाने वाली फसल का बीजरोपण किया जाता था जो आधुनिक दौर में इन सभी बातों की अवहेलना की जा रही है। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान में ही निहित नहीं होती अपितु आचरण की उत्तमता से ही प्रकट होती है ऐसा नही होता तो अनेक शैक्षणिक उपाधियों से समलंकृत व्यक्ति भी अगर अपना आचरण स्वच्छ नहीं रखता तो वह अशिक्षित ही कहलायेगा जैसे-रावण का अद्‌भुत पांडित्य अथवा कौखो का विलक्षण शास्त्रस्त्र ज्ञान महत्त्व विहिन ही नहीं माना गया वरन,लोकनिन्दित भी माना गया क्योंकि रावण एवं कौरव पक्ष दोनों ने शिक्षा से अर्जित अपनी क्षमताओं का उपयोग परपीड़न, परापमान एवं परसंहार में किया।

शिक्षा संस्कृति का एक अंग है। संस्कृति की आत्मा से अनुप्राणित होकर ही शिक्षा सफल हो सकती है। संस्कृति मनुष्य के स्वभाव का संस्कार है। इस संस्कार के अनेक रूप है। इसमें शिक्षा भी एक रूप है। संस्कृति का अर्थ सम्यक् कृति है। कृति का अर्थ निर्माण है। शिक्षा मनुष्य का निर्माण करती है। सम्यक् तथा साम्यपूर्ण होने पर वह भी संस्कृति का एक रूप बन जाती है। क्योंकि ऐसी ही शिक्षा सार्थक एवं सफल होती है। ज्ञानोपार्जन की क्रिया से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यह निर्माण ही शिक्षा की कृति है। शिक्षा की सम्पूर्णता तभी सम्पन्न मानी जानी चाहिए जब वह सामाजिक कर्त्तव्यों, आचरण की ओर अधिकाधिक प्रेरित कर सके। लेकिन वर्त्तमान सर्वव्यापी सभ्यता के संकट के दौर में जो चीज पूरे समाज राष्ट्र एवं विश्व को विचारमंथन के लिए बाध्य कर रही हैं, वह मानवता के नैतिक अधोपतन की दुर्दशापूर्ण स्थिति है। आज व्यक्ति के जीवन में भौतिक सुख-सुविधा एवं समृद्वि के नाम पर बहुत कुछ है, ज्ञान-कौशल की भी उसमें कभी नहीं है, ऊँची-2 डिग्रियाँ हासिल कर चुके हैं, किन्तु उनमें नैतिक गुण विलुप्त सा होता जा रहा है। अभिभावक अधि कतम भौतिक संसाधनों को शीघ्र जुटा लेने की इच्छा की वजह से वे अपने बच्चों के विकास पर भी पूर्ण घ्यान नहीं दे पा रहे हैं तो ऐसे बालकों में नैतिक गुणों के विकास का उमिद कैसे की जा सकती है। नैतिकता एवं मूल्यहीनता के इस साये में पल रही पीढ़ी से हम उच्च आदर्शों एवं मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन की उम्मीद कैसे कर सकते हैं।

पहला महत्त्वपूर्ण दायित्व नैतिक मूल्यों की वृद्वि के लिये परिवार का होता है। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला होती है जिसमें बच्चों के विकास में माता-पिता की अहम् भूमिका होती है। परिवार में ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है। छात्रों में नैतिक गुणों, संस्कारों की स्थापना का प्रयास यहीं से शुरू होता है। आजकल संयुक्त परिवार विघटित होता जा रहा है तथा उच्च आदर्शों एवं परम्परा को खो दिया है जिसमें अपराध, अत्याचार एवं अराजकता से समाज का आक्रांत होना स्वाभाविक ही हैं। बच्चों के उज्वल भविष्य का स्वप्न जो माता-पिता देखते हैं उसके अनुरोध पहले स्वयं में उन्हें आमूल-चूल परिवर्त्तन करने की आवश्यकता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण दायित्व शिक्षण-संस्थानों का होता है गुरु ही शिक्षा प्रणाली के वास्तविक प्राण-तत्त्व होते हैं। गुरु का स्थान तो बहुत ऊँचा कहा गया है इसलिए तो गुरू की महत्ता को निम्न श्लोकों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

' गुरूड़ब्रह्मा, गुरूड़विष्णुः गुरूड़देवो महेश्वरः।
गुरूः साक्षात् परमब्रह्मा, तस्मै श्री गुरूदै नमः॥'

अतः शिक्षकों का दायित्व सबसे ज्यादा है किन्तु विद्यालयों में ऐसे शिक्षकों का अभाव है जो आचरणवान आचार्य हो, शिक्षादान में हृदय से तत्पर हो तथा स्वार्थों से परे हो। आज शिक्षक यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि मौजूदा शिक्षा प्रणाली में चारित्रिक नैतिक विकास हो रहा है अथवा नहीं। आज एक कुशल वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर तो बनाया जा रहा है किन्तु उनमें समाज एवं राष्ट्र से संवेदनात्मक जुड़ाव का अभाव हैं। उन्हें सिर्फ अपना सुख, वैभव एवं प्रतिष्ठा की चिंता रहती है। प्राचीन भारत में ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की अवधारणा पाई जाती है जिसका अभिप्राय है कि पूरी धरती ही एक परिवार है और यहाँ सभी को एक दूसरे के साथ परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। समाजिक-न्याय एवं मैत्री के सामाजिक मूल्य है। मनुष्य की सभी गतिविधियाँ समाज में ही होती हैं। समाज में एक पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता होती है। मनुष्य में मैत्री भाव होता है

समाज में प्रत्येक मुनष्य अधिकतम अपना हित साधनों का प्रयास करता है जिससे समाज में विभिन्न व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के मध्य विवाद या संघर्ष उत्पन्न होता हैं। सामाजिक हित को ध्यान में रहते हुए इस विवाद को सुलझाना ही सामाजिक न्याय कहलाता है। समाज में विभिन्न व्यक्तियों की योग्यताएं एवं क्षमताएं भिन्न-भिन्न होती हैं लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि उनकी योग्यता एवं विभिन्नता के बावजूद भी सबको अवसर की समानता हो और एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का निर्माण हो सके।

सफल इन्सान बनने के लिए हर व्यक्ति में कुछ खास आदतें होना जरूरी हैं जो उसको भीड़ से अलग दिखा सकें। सफलता के कदम चूमने के लिए जितनी अहमियत प्रोफेशनल स्किल्स को दी जाती है उतनी ही महत्ता नैतिक मूल्यों तथा अच्छी आदतों को भी दी जाती है। लेकिन जिस प्रकार एक सफलता की प्राप्ति के लिए की जाने वाली मेहनत व कोशिशें विद्यार्थी जीवन से ही शुरू हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार अच्छे गुणों को धारण करने के की शुरूआत भी विधार्थी जीवन से ही करना जरूरी है क्योकि आदतें चाहे अच्छी हों या बुरी एक या दो दिन में नहीं पाई जा सकती बल्कि ये तो सालों के प्रयास से आती हैं। आपकी आदतें ही आपके भविष्य का निर्माण करती है। यही अच्छी आदतें आपका चरित्र बन जाती हैं। आपके नैतिक मूल्यों व अच्छी आदतों के चलते आप अपने आस-पास के लोगों के बीच प्रिय बन जाते हैं। एक प्राचीन और महान संस्कृति के उत्तराधिकारी भारत के शिक्षा शास्त्रियों ने कभी यह विचार नहीं किया कि संस्कृति मनुष्य के सभ्य जीवन का पर्याय है। सम्पूर्ण संस्कृति को कम से कम शिक्षा के पाठक्रम में एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण विषय के रूप में उसका अध्यापन आवश्यक है। संस्कृति को केवल कला, धर्म, दर्शन, साहित्य आदि का संकलन मानना भी उचित नहीं है। संस्कृति का अपना स्वरूप और उनके अपने सिद्वांत हैं। वर्त्तमान युग में ज्ञानी, पंडित और शिक्षाविद् होने के लिए साक्षरता की परम आवश्यकता होती है इसलिए साक्षरता शिक्षा का एक अंग है। पहले छात्र निरक्षर से साक्षर होता है, फिर साक्षर से पाठक होता है और फिर उच्च शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पंडित हो जाता है। साक्षरत प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। आज की दुनिया विज्ञान और जागृति की दुनिया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वभावत: वर्त्तमान जगत की बातों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। जो समाचार पत्र के माध्यम या टेलीविजन, रेडियो के माध्यम से जानता है।

शिक्षा पर हर व्यक्ति का हक है चाहे वह किसी उम्र, जाति, धार्म या मूलवंश का क्यों न हो। संविधान के 86 वें संशोधन के जरिये मुल और अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार मौलिक अधिकार का दर्जा पा गया। लेकिन इसका सबसे विवादास्पद पहलू यह है कि इस अधिकार को सुनिश्चित करने की जिम्मेवारी सरकार ने अपने ऊपर नहीं ली शिक्षा पर बैठाये गये कोठारी आयोग एवं राममूर्ति अयोगों ने सबके लिए समस्तरीय शिक्षा और साझा स्कूलों का सूझाव दिया था, परन्तु उच्च वर्ग के लोगों को यह भी मंजूर नहीं था।

निम्नलिखित बातों को धयान में रखकर छात्रों में नैतिक गुणों का विकास किया जा सकता है-

1. आदर्श महापुरुषों के व्यक्तिगत उदाहरण देकर।
2. शिक्षण-संस्थानों में योग्य, आदर्श एवं निष्ठावान शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिये।
3. शिक्षा द्वारा छात्रों को धार्मिक, नैतिक, पौरणिक कथाओं, धटनाओं, रोचक कहानियों के द्वारा आधारभूत मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए।
4. शैक्षिक पर्यावरण को नैतिक एवं सौहार्दपूर्ण बनाया जाए जिससे छात्रों में उच्च आदर्शों के लिये निष्ठा एवं उनके अनुसार कार्य करने की भावना का विकास हो सके।

शिक्षा में प्रत्येक अवयव का आधार स्वानुशासन और आत्म निग्रह है। यह उच्च चरित्र और संकल्प वाले व्यक्तियों के उदाहरण से प्राप्त होता है। ऐसे उदाहरण बड़े प्रभावशाली होते हैं और उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। अवगुण भी संक्रमण होते हैं किन्तु गुणों का प्रसार अपेक्षाकृत अधिक होता है। अंधकार के ऊपर प्रकाश की और असत्य के ऊपर सत्य की सदा ही विजय होती है। शैक्षिक संस्थाओं में किसी भी प्रकार की हिंसा के लिए चाहे वह विचार में ही, वाणी में हो या कर्म में हो-स्थान नहीं है। अहिंसा उत्तम शिक्षा का मूल और फल दोनों है। हिंसा अंतत: अधिक हिंसा की ओर ले जाती है। यदि

स्वानुशासन तथा सामाजिक और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, पोषण और संवृद्धि शिक्षा संस्थाओं में ही होगी। समग्र शिक्षा को जिस कार्य का प्रारंभ और प्रयास करना है, वह है- विद्यार्थी में पहले सुसंस्कृत नागरिक बनने, फिर तीर्थयात्री की भाँति कर्त्तव्य पथ अपनाने और समाज तथा विश्व की सेवा में दीप्तिमान स्वयंसेवक होकर काम करने की तीव्र भावना भर देना। उन्हें पहले सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से नागरिक के रूप में और विवेक के लिए उत्साही जिज्ञासु से रूप में विकसित होना है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्ञान, कौशल, संतुलन, बोध और सौम्यता एक शिक्षित व्यक्ति के प्रमाणचिह्न हैं। व्यक्ति अपने जीवन में इन्हें अर्जित करता है। जब वह इसके बाहर आता है तो वह सामान्य तथा विशिष्ट क्षेत्रों में ज्ञानवान और कुशल तथा अपने स्वभाव और आचरण में सौम्य तथा संतुलित रखता है।

निष्कर्ष:

अंत में एक शिक्षक एवं लेखक होने के नाते इस समाज के प्रति मेरे कुछ दायित्व भी हैं। जैसा कि हम जानते हैं बालकों में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है इसलिए शिक्षक, अभिभावक, प्रशासक, राजनेता एवं समाज तथा राष्ट्र के कर्णधारों को बालकों के समक्ष मूल्यों एवं आदर्शों की उपयुक्त प्रस्तुति रखनी होगी जिसका अनुकरण कर वे समाज के एक योग्य चरित्रवान नागरिक बन सके। व्यक्ति व्यावसायिक दृष्टिकोण त्यागकर धर्म, दर्शन, शिक्षा एवं संस्कृति जैसे क्षेत्रों में अधिक से अधिक निवेश करें जिससे दूसरों की भलाई हो सके। अत: शिक्षण-संस्थानों के माध्यम से छात्रों में नैतिक मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति जागृति उत्पन्न की जा सकती है जिससे स्वच्छ एवं चरित्रवान समाज का निर्माण किया जा सकता है। नैतिक शिक्षा एवं संस्कृति का महत्त्व मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य होने के साथ-साथ वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का एक उपयोगी साधन भी है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व व बृद्धि का विकास कर उसे आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कार्यों को सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। शिक्षा को एक ऐसे उपकरण के रूप में भी मान्यता दी गई है, जिसकी सहायता से समाज में परिवर्तन व विकास के लिए अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. पाठक, पी. डी. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याओं नवीन संस्करण,पृष्ठ संख्या 2.62,विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
2. अखण्ड ज्योति फरवरी 2004, पृष्ठ संख्या 19, 20
3. सबके लिए शिक्षा राष्ट्रीय योजना-भारत।
4. सबके लिए शिक्षा-क्या विश्व प्रगति के पथ पर है 2002 यूनेस्को।
5. भटनागर, सुरेश (2004),भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विकास, पृष्ठ संख्या 3, 10 सूर्या प्रकाशन, मेरठ।
6. डॉ. चौबे, एस. पी. नवीन संस्करण, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें पृष्ठ संख्या 213, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. डॉ. जायसवाल, सीताराम 1987, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें पृष्ठ संख्या 490.
8. भारत में विद्यालय शिक्षा, पृष्ट सं0 29
9. डेवी, जॉन 1916, डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन, न्यू मार्क।
10. शिक्षा में बदलाव का सवाल - अनिल सद्गोपाल- ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली वर्ष 2004
11. नैतिक शिक्षा: विविध आयाम, पृष्ट सं0 34-38